स्वपथगामी

अंक – 5 मार्च 2005

नई राह के दावेदार

किसी व्यवस्था, अमानवीय ढाँचे या मानसिक गुलामी से मुक्त होना बहुत चुनौतीपूर्ण होता है। हममें से ऐसे लोग, जो अर्थपूर्ण जीवन जीने के नए रास्ते खोजना चाहते हैं; उनको जरा–सी मदद और प्रोत्साहन मिले, तो यह आसान हो सकता है और हमारे सामने विभिन्न विकल्प उभरकर आ सकते हैं।

इस बार हमने तय किया है कि 6 अप्रैल को **'स्वपथगामियों के नए कदम'** के रूप में मनाया जाए। यह एक ऐसा अवसर है, जब हम एक–दूसरे को स्वपथगामी बनने और निरन्तर अपने बनाए रास्तों पर चलने के लिए मदद कर सकते हैं। यह वही दिन (6 अप्रैल, 1930) है, जब गाँधीजी ने अंग्रेजों के नमक–कानून का प्रतिकार करते हुए खुद अपना नमक बनाने की शुरूआत की थी।

हरेक उत्सव में ऐसे लोग, जो किसी थोपी हुई व्यवस्था या मानसिकता से बाहर निकलने का निर्णय कर चुके हैं; वे इस दिन एक नई राह पर चलने का ऐलान करेंगे। ये उत्सव अलग–अलग जगहों पर विभिन्न रूपों में आयोजित किए जाएँगे। ऐसी प्रक्रियाओं को बढ़ाने हेतु सुझावों और अपने क्षेत्र में इस प्रकार के उत्सवों के आयोजन के लिए सम्पर्क करें : – <shikshantar@kowalke.info>

walking on...

"कॉलेजी पढ़ाई और नौकरी से धापकर, 'चैलेंज है' पर कर रहा हूँ यह ऐलान। घर की खेती और चित्रकारी से, जीवन को दूँगा नए आयाम।"
– गोपाल नागदा, उदयपुर

"मुझे कोका–कोला, पेप्सी की लत सी हो गई थी। जब मुझे लगा कि ये मेरे शरीर के लिए घातक है, तो मैंने तय किया कि ऐसी कोल्ड – ड्रिंक्स को छोड़कर मैं अब अधिक पानी, ज्यूस का इस्तेमाल करूँगी। साथ ही अपने पेय पदार्थ खुद बनाऊँगी।"
– श्रेया, न्यूयार्क

"अंगरेजी दवाइयाँ अर इंजेक्शना ऊँ परेशान होइने म्हूँ अणी दवाइयाँ ने छोड़ी रियो हूँ। अब म्हूँ हमेशा देशी दवाइयाँ अर जड़ी–बूटियाँ लेवारी कोशिश करूँगा।"
– सुमित वैष्णव, उदयपुर

"मैं केवल बुद्धि से नियन्त्रित जीवन से निकलना चाहती हूँ। मेरे ख्याल से विचार–प्रक्रिया मे 'आपकी सोच क्या है?' केवल यही महत्वपूर्ण नहीं, बल्कि 'आप किस प्रकार उन विचारों को विकसित करते है?' वो भी बहुत मायने रखता है। मैंने अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में बहुत सारे बड़े निर्णयों को अपनी अन्तः प्रेरणा पर छोड़ दिया है। कोरी बुद्धि से परे होकर मैं अपने आसपास की दुनिया से जीवन्त रिश्ता बनाना चाहती हूँ। मैं बौद्धिकता के खिलाफ नहीं हूँ, पर उसकी सीमाओं को ध्यान में रखती हूँ।"
– सुप्रभा सेशन, केरला

"मैंने तय किया है कि पेट्रोल–डीजल से चलने वाली गाड़ियों का इस्तेमाल रोजमर्रा के काम के लिए नहीं करूँगा। इसके बजाय मैं रोज साइकिल चलाऊँगा।"
– विशाल सिंह धायभाई, उदयपुर

walking out...

शहर में देशी खेती

– सन्दीप बोर्दिया <sandeepbordia2002@yahoo.co.in>

जब मैं बहुत छोटा था, तब मेरे दादाजी खेती किया करते थे। मैं स्कूल जाता था, लेकिन दादाजी के साथ खेत में काम करने का बहुत शौक था। उनके साथ मैं भी खेत में काम करता, पेड़ों को पानी पिलाता। धीरे–धीरे खेती के काम के लिए समय कम मिलने लगा और रुचि भी नहीं रही।

पढ़ाई के बाद एक कम्प्यूटर–प्रोडक्शन कम्पनी में नौकरी की। लगभग 10 साल की नौकरी में मैंने महसूस किया कि वहाँ अपने काम पर खुद का कोई नियन्त्रण नहीं है। कभी भी कहीं भी ट्रांसफर हो सकता है। अपनी इच्छा से कोई काम नहीं किया जा सकता। कम्पनी के उस काम का मेरे जीवन से भी कोई जुड़ाव नहीं था। मैं उदयपुर छोड़कर नहीं जाना चाहता था और स्थानीय स्तर पर ही कुछ नया करना चाहता था, जिसमें मेरी रुचि हो, खुद का नियन्त्रण हो और समाज व प्रकृति के भी हित में हो।

कुछ साल पहले से मेरे मन में यह सवाल था कि आज से 50 साल पहले तक लोग इतने स्वस्थ कैसे रहते थे? उनको न तो इतनी बीमारियाँ होती थीं और न ही उन्हें अपने स्वास्थ्य के लिए किसी पर निर्भर रहना पड़ता था। इसके बाद मैंने यह विश्लेषण करना शुरू किया कि आज हम जो रसायनयुक्त खाद्य–सामग्री या अनाज–सब्जियाँ बाजार से ला रहे हैं और बिना सोचे–समझे खाए जा रहे हैं, उसका परिणाम हम बहुत सारी बीमारियों के रूप में भुगत रहे हैं। यह सोचकर मेरी रुचि देशी खेती की ओर होने लगी। मेरे देशी खेती करने के निर्णय का परिजनों और रिश्तेदारों ने विरोध किया कि मैं एक अच्छी नौकरी छोड़कर खेती क्यों करना चाहता हूँ?

आरम्भ में तो मुझे थोड़ा मुश्किल लगा कि शहर में रहकर खेती करना कैसे सम्भव होगा? करीब दो साल पहले कुछ लोगों के सुझावों से मैंने देशी खेती की शुरूआत अपने घर की छत और किचन–गार्डन से की। मेरे पास एक खाली प्लॉट था, जिसमें ढेर सारा मलबा भरा था। जैसे–जैसे मेरी रुचि बढ़ती गई, मैंने अपने प्लॉट में पड़े मलबे को हटाकर, जमीन को समतल किया और गोबर खाद, सूखे पत्ते डालकर जमीन को उपजाऊ बनाया। लगभग एक बीघा जमीन में देशी सब्जियाँ उगाना शुरू कर दिया। मेरे पास न तो कोई बड़े संसाधन थे और न ही मैंने किसी इंस्टीट्यूट में कोई कोर्स किया। उदयपुर और अन्य जगहों पर मैंने अलग–अलग लोगों एवं संस्थाओं से रिश्ता बनाया। कार्यशालाओं, मीटिंगों में जा–जाकर और खुद प्रयोग कर–करके सीखा। धीरे–धीरे मुझे अपने घर व आसपड़ौस के लिए ताजी सब्जियाँ मिलने लगी, अपना बीज तैयार होने लगा।

मैं अपने खेत में घर के बीज, खाद के रूप में रसोई का बेकार कचरा और नाली के पानी को फिल्टर करके सिंचाई के उपयोग में लेता हूँ। इस प्रक्रिया में मुझे अकसर किसी प्रकार के कीटनाशक पदार्थों की जरूरत ही नहीं पड़ती। क्योंकि सब्जियाँ उगाने के साथ ही मैं ऑक, नीम के पत्तों और गोमूत्र से देशी कीट–नियन्त्रक तैयार करके छिड़क देता हूँ, जिससे कीट लगने की सम्भावनाएँ बहुत कम हो जाती है। अगर कीट लग भी जाते हैं, तो भी इसी से कीटों को नियन्त्रित करने में मदद मिलती है।

देशी सब्जियों के अलावा मैं वर्मी–कम्पोस्ट तैयार कर रहा हूँ और सामान्य तौर पर काम आने वाले औषधीय पौधे भी उगा रहा हूँ, ताकि अपने परिवार और मौहल्ले के लोगों के लिए छोटी–मोटी बीमारियों का इलाज भी अपने स्तर किया जा सके। साथ ही मैं उदयपुर में आसपास के लोगों को देशी सब्जियों के किचन–गार्डन तैयार करने में भी मदद करता हूँ। अब तक मैंने लगभग 20–25 किचन–गार्डन तैयार किए हैं। इन परिवारों के साथ मैं कोशिश करता हूँ कि वे अपने रसोईघर से निकले कचरे और पानी की मदद से परिवार के लिए पर्याप्त सब्जियाँ पैदा कर सकें और खुद रसायन–युक्त सब्जियों से मुक्त हो सकें।

आज मेरे परिवार के लोग भी खुश हैं कि हमारा घर का काम भी चल जाता है और हमें बाजार पर भी ज्यादा निर्भर नहीं होना पड़ता। इन दो सालों में मैं खुद को बहुत स्वस्थ महसूस करता हूँ। खेती करते हुए मैं अपने जीवन को अलग ढंग से समझ रहा हूँ। आज मेरे पढ़े–लिखें दोस्तों को खेती जैसे काम में शर्म आती है, लेकिन मैं इस काम को खुलकर लगन के साथ करता हूँ। खेती से मुझे आत्मसन्तुष्टि तो मिलती ही है, साथ ही इसके जरिये अपने आसपास के लोगों और अलग–अलग समुदायों से रिश्ता बना पा रहा हूँ। उनके साथ बाजार से आने वाले रासायनिक खाद्यों और स्वास्थ्य के बारे में बातचीत करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि शहर के लोग भी खेती जैसे जमीन से जुड़े कामों में भागीदार बनें और अपने जीवन को बड़े बाजार के नियन्त्रण से छुटकारा दिलाएँ।

देशी खेती, वर्मी–कम्पोस्ट और औषधीय पौधों के बारे में अपने अनुभव बाँटने और साथ मिलकर सीखने के लिए मैं स्वपथगामियों को आमन्त्रित करता हूँ।

पता :– 109, देवाली, उदयपुर (राज.)
फोन : 09414164604

स्कूल का झूठ

'हाथ के काम नीचे होते हैं!?'

– मनोज प्रजापत <dhakkan59@yahoo.com>

मुझे याद है जब मै तीन चार साल का था, तो पापा के साथ जाना बहुत पसन्द करता था। पापा ठेला चलाते थे, जिसमें वे गोला, शर्बत, फलूदा बेचते थे। जब मैं पाँच साल का हुआ, तो पापा ने मुझे स्कूल भेजना शुरू कर दिया। मेरा पापा के साथ जाना छूट गया। लेकिन जब भी स्कूल का अवकाश होता, तो मैं पापा के साथ चला जाता था। जब मैं पाँचवी–छठी कक्षा में आया तो मुझे ठेला चलाने में कुछ शर्म सी महसूस होने लगी। स्कूल ने मुझे सिखाया कि ठेला चलाना तो अनपढ़–गँवारों का काम है। जो लोग पढ़े–लिखे होते हैं, वे लोग ऐसा काम नहीं करते हैं। मैं सोचता था कि मैं तो पढ़ाई कर रहा हूँ और अब मैं पापा के साथ जाऊँगा या ठेला चलाऊँगा, तो मेरे दोस्त क्या कहेंगे! मेरे दिमाग में हमेशा एक ही प्रश्न उठता था कि केवल मेरे पापा ही ठेला क्यों चलाते हैं? आठवीं–नवीं कक्षा तक आते–आते तो मुझे इतनी शर्म आने लगी कि ठेले से नफरत सी होने लगी और कभी–कभी तो पापा के साथ झगड़ा भी हो जाता था। उसके बाद से तो मैंने ठेले पर जाना बिल्कुल ही छोड़ दिया।

आज मैं सोचता हूँ कि जिस ठेले से मैं इतनी नफरत करता था, उसी से तो मैं इतना बड़ा हुआ हूँ। आज जिनको लोग 'ऊँचा या बड़ा काम' मानते हैं, उनमें ही ज्यादा झूठ, बेईमानी और भ्रष्टाचार होता है। जबकि हमारे उस काम में सच्चाई और ईमानदारी तो थी। जबसे मैंने इस वास्तविकता को जाना है कि कोई भी काम कभी ऊँचा या नीचा नहीं होता है। यह तो केवल अपनी सोच पर निर्भर करता है कि हम उसे किस नजर से देखते हैं। इसलिए अब मुझे लगता है कि जो मैं सोचता था, वह ग़लत था। पहले मेरी मानसिकता थी कि कुछ काम ऐसे होते हैं, जो केवल लड़कियों के लिए ही होते हैं – जैसे खाना बनाना, पानी भरना, घर की सफाई करना ...। लेकिन अब मुझे लगता हैं कि कोई भी काम लड़का या लड़की के लिए विशेष रूप से चुना नहीं गया है। सभी कार्यों में सब बराबर के भागीदार हैं और सभी कार्य करने चाहिए।

अब मेरी यह सोच बन रही है कि मैं किसी के दबाव में रहकर काम नहीं करूँगा और मै स्वयं अपने हाथों से काम करके सीखने और जीने के रास्ते खुद बनाऊँगा। अब मैं अपने बड़े भैया के साथ मिनिएचर पैंटिंग करता हूँ और वे सब काम भी करता हूँ, जिनको मैं पहले लड़कियों के काम मानता था। मैं अपने घर पर देशी खेती का प्रयास कर रहा हूँ और गोबर व पत्तों से देशी खाद भी तैयार कर रहा हूँ। शिक्षान्तर में अलग–अलग कलाओं और कामों को लेकर आयोजित कार्यशालाओं में अलग–अलग लोगों के साथ सीखना मुझे बहुत अच्छा लगता है।

बनी-बनाई दुनिया

असली सौन्दर्य की ओर

– रामावतार सिंह <ramawtarsingh@yahoo.co.in>

कुछ साल पहले तक मैं किसी भी चीज़ को खरीदने से पहले उस पर कम्पनी की छाप, आई एस आई मार्का और उसकी कीमत को जरूर ध्यान में रखता था। सुगन्धित साबुन, तेल, क्रीम एवं अन्य सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री मेरे आकर्षण की चीजें थीं। मैं अकसर इन चीजों को खरीदने का निर्णय टीवी और अख़बार के विज्ञापनों के आधार पर करता था।

धीरे–धीरे कुछ आन्दोलनों के प्रभाव में आकर मैंने बड़ी कम्पनियों के उत्पादों को खरीदना बन्द कर दिया, लेकिन छोटी कम्पनियों द्वारा बनी चीजों पर अब भी निर्भर था। यह सोचकर तसल्ली होने लगी कि अब मैं जिन कम्पनियों के उत्पाद खरीदता हूँ, वे स्वदेशी (!) हैं। लेकिन मैंने कभी यह जानने की कोशिश नहीं की कि जिन चीजों का मैं इस्तेमाल करता हूँ, उन्हें बनाने वाले लोग कौन हैं? इनमें क्या–क्या चीजें मिलाते हैं? इन्हें बनाने की क्या प्रक्रिया है? बनी–बनाई चीजें हमें परोसने का असली मकसद क्या है?

एक दिन मैं ब्यूटी–पार्लर चलाने वाली एक महिला से मिला। उसने बताया कि हमारे यहाँ जो साबुन, क्रीम, लोशन आदि इस्तेमाल किए जाते हैं, उनमें एलोवेरा होता है। एकबारगी तो मुझे लगा कि एलोवेरा किसी दुर्लभ चीज का नाम है। बाद में समझ आया कि जिन चीजों को एलोवेरा के नाम से बेचकर हमें बेवकूफ बनाया जाता है, वह तो वही ग्वारपाठा है, जो आमतौर पर नदी–नाले या तालाब के किनारे और किसी भी पहाड़ पर आसानी से देखा जा सकता है। हालाँकि इससे पहले मैं ग्वारपाठे का उपयोग अपने पेटदर्द की ओषधि के रूप में कर चुका था और औषधीय उपयोग में इसकी गुणवत्ता का लोहा मान चुका था।

उस दिन के बाद मैंने ग्वारपाठे को साबुन (नहाने के लिए), स्किन क्रीम और शेविंग लोशन के रूप में इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। ये सब करते हुए मुझे बहुत सारी स्थानीय चीजों के बारे में जानने का मौका मिला, जो न केवल बनी–बनाई सौन्दर्य–प्रसाधन सामग्री के विकल्प बन सकते हैं, बल्कि अपने जीवन को बाजारी राक्षस के नियन्त्रण से मुक्त करने में भी मदद कर सकती है। अपने दैनिक उपयोग की चीजें हमारे आसपास ही प्रकृति में आसानी से मिल सकती है, अगर हम जरा भी ग़ौर से देखने और जानने की तकलीफ करते हैं तो! मैंने देखा है कि कई लोग और कम्पनियाँ इन चीजों से बहुत कीमती औषधियाँ और चीजें बनाकर बेचते हैं।

जैसे–जैसे मैं प्राकृतिक चीजों से जुड़ रहा हूँ, अपने जीवन, स्वास्थ्य और सुन्दरता को अलग नजरिये से समझ पा रहा हूँ। प्रकृति को महसूस करने में मैं जिस सौन्दर्य को खोज पाया हूँ, वह इन बनावटी चीजों में कतई सम्भव नहीं है। मेरा प्रयास है कि मैं स्थानीय वनस्पतियों, चीजों और लोगों के साथ गहरा रिश्ता स्थापित करूँ और अपनी जरूरतों को यथा–सम्भव स्थानीय स्तर पर निर्मित चीजों से ही पूरा करूँ। अब मेरा प्रयास है कि मैं दन्त मंजन, केश–तैल, मसाज–तैल आदि चीजें भी अपने स्तर पर बनाऊँ। फिलहाल मैं अपने कपड़ों के बारे में गम्भीरता से विचार कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि मैं सिर्फ अपने हाथ से कते सूत का कपड़ा पहनूँ। इस सन्दर्भ में बातचीत और सुझावों के लिए आप आमन्त्रित हैं।

ढाई आखर प्रेम के

- पीटर कोवाल्की <peter@kowalke.info>

जब मैं साढ़े दस साल का था, तब मैंने 'पढ़ना' शुरू किया और 13 साल तक 'लिखना' नहीं सीखा! अमेरिका में अधिकांश बच्चे 6–7 साल की उम्र तक पढ़ना–लिखना सीख जाते हैं। उनकी तुलना में मेरा पढ़ना–लिखना बहुत देर से शुरू हुआ, लेकिन स्कूल में नहीं। स्कूल तो मैं कभी गया ही नहीं! मेरे माता–पिता दोनों शिक्षक थे और स्कूली–व्यवस्था को गहराई से जानते थे। इसीलिए उन्होंने मुझे स्कूल भेजने के बजाय घर पर ही अपनी रुचि की चीजें सीखने के लिए प्रोत्साहित किया।

मैंने पढ़ने–लिखने पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया, क्योंकि इसकी मुझे कोई जरूरत नहीं थी। अगर मुझे किसी कहानी की जरूरत होती, तो मेरी माँ मुझे कोई कहानी सुना देती या मुझे किसी खास विषय पर कोई जानकारी की जरूरत होती, तो मैं अपने परिजनों या दोस्तों से पूछ लेता। रही बात सड़क संकेत चिह्नों, दुकानों के साइन बोर्ड्स आदि पढ़ने की... तो मुझे नहीं लगता कि बच्चों को इनसे कोई ज्ञान मिलता है! मिठाई और खिलौनों की दुकानों में तो प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है कि वहाँ क्या–क्या है? फिर उनके साइन बोर्ड्स को पढ़ने का क्या अर्थ?

दरअसल मुझे लिखना सीखने की भी कोई जरूरत नहीं थी। अगर मुझे कागज के जरिये कोई बात कहने की जरूरत होती, तो मैं चित्र बना लेता या चित्रों की श्रृंखला बनाकर अपने विचारों को व्यक्त कर सकता था। हालाँकि ड्रॉइंग करने के बजाय लिखने में कम समय लगता है, क्योंकि लिखने में एक बनी–बनाई तकनीक होती है।

मेरी तब तक ड्रॉइंग में रुचि थी, जब तक कि 'अक्षर' ने मुझसे लिखना सीखने की गुहार नहीं की। इस प्रकार मेरी लिखने की अक्षमता ने मेरी कलात्मक प्रतिभा को पल्लवित होने का अवसर दिया। पढ़ने–लिखने की शुरूआत से पहले मुझे सृजनशील बनने और अपनी कल्पनाशक्ति को बढ़ाने का भरपूर मौका मिला। मुझे लिखे हुए को पढ़ने या किसी लेखन की कॉपी करने के बजाय खुद की रुचि के अनुसार खेल खेलने, चित्र बनाने और अपनी मौलिक सोच को बढ़ाने का पर्याप्त समय मिला।

मुझे कागजी–साक्षरता[1] की जरूरत पहली बार तब महसूस हुई, जब मेरी कार्टून–पुस्तिकाओं के बारे में जानने में रुचि हुई। कॉमिक बुक्स के चित्रों ने मुझे बहुत आकर्षित किया, लेकिन पात्रों के संवाद नहीं पढ़ पाने के कारण समझ पाना मुश्किल था। तो पहली बार मुझे 'पढ़ना' सीखने का ठोस कारण मिला। मुझे ये कॉमिक–बुक्स पढ़ने की जरूरत थी! कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि मैंने चन्द महिनों में पढ़ना सीख लिया।

लिखने की शुरूआत कुछ वर्ष बाद हुई, फिर एक व्यक्तिगत जरूरत के साथ। तब मैं 13 साल का था, जब एक सम्मेलन में एक हमउम्र लड़की से मिला। मैं उसे अपनी मित्र बनाने के लिए बहुत उत्सुक था। लेकिन हम उसके घर से बहुत दूर रहते थे, इसलिए उससे निरन्तर मिलते रहना सम्भव नहीं था। मैं उसे फोन भी नहीं कर सकता था, क्योंकि लम्बी दूरी के फोन–कॉल की कीमत बहुत ज्यादा थी। ई–मेल की सुविधा भी उन दिनों इतनी नहीं थी। मेरे सामने केवल एक ही विकल्प था – पत्र लिखना। मुझे लिखने की वास्तविक जरूरत अब महसूस हुई। मैंने अकसर अपने रचनात्मक कौशल का उपयोग किया। अपने परिजनों की मदद से लिखने की क्षमता को विकसित किया।

जरूरत ने मुझे एक लेखक बनाया और मुझमें लेखन के प्रति रुचि पैदा की, जो कि अब लड़कपन के प्रेम–पत्रों से बहुत परे है। पत्र–लेखन के अनुभवों के बाद मैंने एक राष्ट्रीय–स्तर की छोटी सी पत्रिका की शुरूआत की। मैं आज एक पत्रकार और पत्रिका–सम्पादक के रूप में अपनी जीविका चला रहा हूँ।

मेरे अनुभव यह दिखाते हैं कि बिना 'जरूरत' और 'सन्दर्भ' के पढ़ना–लिखना भार होता है, जिससे बरसों तक रटने के बाद भी पठन–लेखन का कौशल विकसित नहीं हो सकता। अगर इस कौशल की वाकई असली जरूरत है, तो जरूरतमन्द व्यक्ति स्वतः ही सीख लेगा। और अगर जरूरत नहीं है, तो उसे सीखें क्यों? अमेरिका में मेरे कई ऐसे मित्र हैं, जो केवल सड़क–संकेत और कुछ शब्दों को पढ़ पाते हैं, लेकिन वे अच्छा एवं सन्तोषप्रद जीवन जी रहे हैं। क्योंकि उन्हें अपने काम और व्यक्तिगत रुचि के लिए लिखित साक्षरता की जरूरत नहीं है। फिर उन लोगों पर पढ़ने–लिखने के लिए दबाव क्यों डाला जाए, जिन्हें उसकी जरूरत ही नहीं है?

मैं इस विषय पर संवाद के लिए आमन्त्रित करता हूँ कि हम बच्चों पर बिना जरूरत के पढ़ने–लिखने की आवश्यकता को क्यों थोपते हैं? मैं यह भी चर्चा करना चाहता हूँ कि जिन्हें हम पूर्वाग्रह के कारण अपनी जरूरतें मान लेते हैं और जीवनभर उन्हें पूरा करने के लिए जुटे रहते हैं, वे वास्तव में हमारी जरूरतें हैं भी या नहीं?

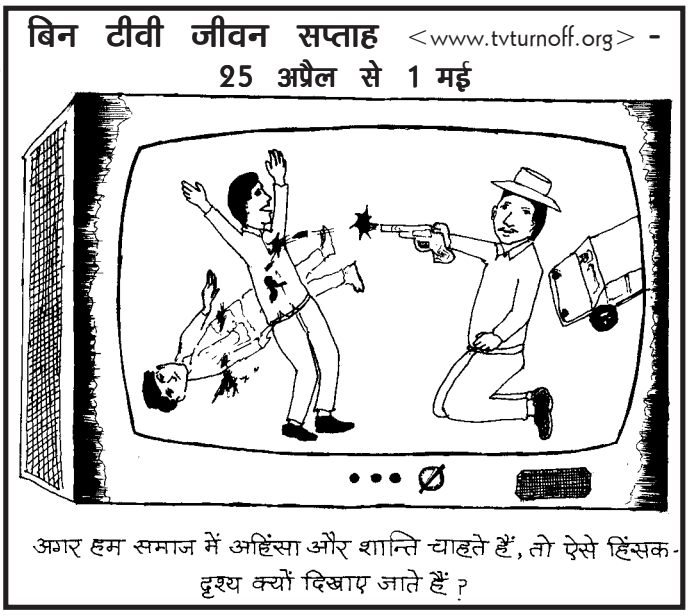

[1] . साक्षरता केवल कागज पर पढ़ने-लिखने तक सीमित नहीं है। विभिन्न कलाएँ, संकेत, अभिव्यक्ति के सामुदायिक माध्यम - माण्डणे, नाटक आदि साक्षरता के विभिन्न स्वरूप हैं। केवल पढ़ने-लिखने पर अधिक बल देने का अर्थ साक्षरता के विविध प्रकारों को नकारना ही है।

अपने हाथों की कठपुतली

– गणेश गायरी

दसवीं कक्षा के बाद स्कूल छोड़कर मैंने भारतीय लोककलामण्डल में काम करना शुरू कर दिया। यहाँ शुरूआत में मेरा काम था – मेहमानों और विजिटर्स को लोककलामण्डल परिसर में घुमाना और उनको थोड़ी जानकारियाँ देना। मुझे इस तरह का काम कुछ रास नहीं आया। मैं कुछ नया करने के लिए उत्साहित रहता था। इसलिए खाली वक्त में कठपुतली कार्यक्रम देखने आ जाता। चुपके–चुपके कठपुतली चलाने वाले कलाकारों को ध्यान से देखता। एक बार मैंने उन कलाकारों से कठपुतली चलाना सीखने की इच्छा जताई, लेकिन उन्होंने मना कर दिया। जब वे लोग कार्यक्रम खत्म होने के बाद चले जाते थे, तो मैं कठपुतलियाँ नचाया करता।

एक बार कठपुतली शो करने वाले लोग बाहर गए हुए थे और अचानक शो करने की जरूरत आ पड़ी। टीम के बाकी लोग चिन्तित थे कि उनके बिना ये सब कैसे होगा? उस दिन मैंने विश्वास के साथ कहा कि मैं आज कठपुतली शो करना चाहूँगा। उस कार्यक्रम के बाद मुझे काफी प्रोत्साहन मिला।

आज कठपुतली के माध्यम से मुझे पारम्परिक ज्ञान और लोककथाओं को समझने का मौका मिलता है। मेवाड़ की संस्कृति, गीत, नृत्य, कहानियाँ मेरे काम का हिस्सा है। अब मेरे लिए कठपुतली चलाना केवल मनोरंजन का ही काम नहीं है। कार्यक्रम से पहले हम उससे सम्बन्धित लोककथाओं को बारीकी से समझते हैं, साथी कलाकारों के साथ बातचीत करते हैं। हर कहानी या घटना को प्रदर्शित करने के लिए कठपुतली पात्रों का चयन करना, वेशभूषा का चयन करना, पात्रों के चरित्र और भावों को व्यक्त करना ...ये सब चीजें हम खुद करते हैं।

इस कला से जुड़ने से मुझे समझ आया कि अभिव्यक्ति के पारम्परिक माध्यम सामुदायिक जीवन के साथ गहराई से जुड़े होते थे।

कठपुतली शो में सारी कहानियाँ आम लोगों में प्रचलित कहानियों, घटनाओं, कहावतों पर आधारित होती हैं। आज के पढ़े–लिखे युवा ऐसे माध्यमों को नकार रहे हैं, कठपुतली–प्रदर्शन जैसी कला को अपनाने में शर्म महसूस करते हैं और टीवी या सिनेमा के सामने मूक–दर्शक बनकर अपना समय गँवा रहे हैं। टीवी–सिनेमा का कलाकार बनने के बजाय मैं कठपुतली–कलाकार होना ज्यादा पसन्द करता हूँ। क्योंकि टीवी–कलाकार तो खुद एक कठपुतली की तरह है, जिन्हें किसी और के नियन्त्रण में काम करना होता है। जबकि कठपुतली पर मेरा अपना नियन्त्रण है, जिसे मैं अपनी बात कहने और लोगों से संवाद करने के माध्यम के रूप में इस्तेमाल कर सकता हूँ।

अपनी इस कला को विकसित करने तथा युवा साथियों को भी इस कला से जोड़ने के लिए मैं अपना एक कलाकार समूह बनाना चाहता हूँ। अपने आत्म–संतोष, लोगों के साथ दोस्ती के अलावा यह मेरे रोजगार का भी अच्छा जरिया है, जिसके लिए मुझे समाज और प्रकृति को कोई नुकसान पहुँचाने की जरूरत नहीं है। इस कला में रुचि और थोड़ा जानकारी रखने वाले स्वपथगामियों के साथ मैं अपने अनुभव बाँटने को तैयार हूँ।

सम्पर्क करें :– डॉगियों का गुड़ा, पो. लखावली, तहसील गिर्वा, उदयपुर फोन : 09829165019

शिक्षक कौन?

एक शिक्षक द्वारा शिक्षा के बारे में पूछने पर खलील ज़िब्रान का जवाब :–

''कोई भी व्यक्ति तुम्हारे सामने केवल उसी को उद्घाटित कर सकता है, जो तुम्हारे अन्तर में ज्ञान की पौ फटने से आधी नींद में पड़ा अलसा रहा है। मन्दिर की छाया में अपने शिष्यों के मध्य चलता हुआ गुरु उन्हें अपनी बुद्धि नहीं दे सकता। वह सिर्फ अपनी आस्था और अपना प्रेम ही बाँटता है। यदि वह सचमुच बुद्धिमान है, तो वह तुमसे अपनी बुद्धि के भवन में प्रवेश करने को नहीं कहेगा। वह तुम्हें तुम्हारे अपने ही मस्तिष्क की दहलीज की ओर ले जाएगा।

नक्षत्र–शास्त्र का पण्डित यूँ तो तुम्हें अपने अन्तरिक्ष – सम्बन्धी ज्ञान का परिचय दे देगा, किन्तु वह तुम्हें अपना ज्ञान नहीं दे सकता। संगीतज्ञ भी यूँ तो समस्त ब्रह्माण्ड में समाई हुई लय को गाकर सुना देगा, किन्तु वह तुम्हें इस लय को साधने वाले कान अथवा संगीत को प्रतिध्वनित करने वाले स्वर नहीं दे सकता। जो गणित–शास्त्र का पण्डित है, वह यूँ तो तुम्हें माप और तौल के क्षेत्रों से परिचित करा देगा, किन्तु तुम्हें वहाँ तक पहुँचा नहीं सकता है। क्योंकि एक मनुष्य की दृष्टि दूसरे मनुष्य को अपनी क्षमताएँ उधार नहीं दे सकती।

जैसे ईश्वर अपने ज्ञान में तुममें से प्रत्येक मनुष्य को पृथक् और अकेले खड़ा देखता है, ठीक उसी प्रकार ईश्वर के ज्ञान और संसार की समझ को प्राप्त करते हुए तुम्हें भी अकेले ही रहना है।''

उक्त अंश खलील ज़िब्रान द्वारा रचित पुस्तक 'द प्राफेट' के हिन्दी अनुवाद 'पैगम्बर' (अनुवादक : नीलिमा सिंह) से लिया गया है।

स्वावलम्बन का कौशल

पिछले दिनों इंदौर में राधाबहन से मिलने का मौका मिला। इनके जीवन के अनुभव स्वपथगामियों के लिए प्रेरणादायी हो सकेंगे, इसलिए इनसे हुई बातचीत को प्रस्तुत कर रहे हैं :-

लक्ष्मी आश्रम से आप कैसे जुड़ीं?

– मेरी उम्र लगभग 16 साल थी, जब मैं 12वीं कक्षा में पढ़ती थी। उन दिनों 15–16 साल की लड़कियों की शादी होना आम बात थी। शादी से बचने के लिए मैंने 12वीं कक्षा तक पढ़ाई जारी रखी। सामाजिक कार्यों में बचपन से ही मेरी रुचि थी। इसलिए पिताजी ने मुझे यह सोचकर लक्ष्मी आश्रम भेजा कि शायद कुछ महीनों बाद मैं खुद ही वापस लौट आऊँगी और शादी के लिए तैयार हो जाऊँगी। लेकिन आश्रम में मेरी रुचि इतनी बढ़ी कि वहीं पूरा जीवन गुजारने का निश्चय कर लिया।

आश्रम में आपके क्या अनुभव रहे?

– लक्ष्मी आश्रम लड़कियों के लिए कर्ममय जीवन जीने की जगह थी। वहाँ मुझे शिक्षिका के रूप में काम करने का मौका मिला। लेकिन वहाँ का पूरा माहौल और प्रक्रियाएँ स्कूली–व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न थे। लड़कियाँ और शिक्षिकाएँ सब साथ मिलकर रचनात्मक श्रमकार्य किया करते थे। कक्षा से ज्यादा बाहर जंगल में सीखने के मौके मिले। यहाँ रहते हुए हम भूदान, ग्रामदान आन्दोलनों में हिस्सा लेते, लोगों के साथ रहकर खेती, पशुपालन सब तरह के कामों से सीखते। यहाँ हर काम में नित–नवीनता होती थी। आश्रम में मुझे विशेषकर बगीचे में काम करना पसन्द था। केवल ऑफिस में काम करने से मुझे संतोष नहीं मिलता था। खेत में मिट्टी के स्पर्श से शरीर और मन को स्वस्थ रहता था।

आश्रम की कोई घटना, जिससे ताकत मिली?

– चिपको आन्दोलन शुरू होने से पहले हमने आश्रम की खाली जमीन में वृक्षारोपण किए थे। इस आन्दोलन के दौरान हमने बहुत बड़े नाले के कटाव को रोकने के लिए छोटे–छोटे बंध बनाए और मिट्टी के कटाव को रोका, नाले के एक तरफ पेड़ लगाए। हमें कुछ बंजर जमीन मिली थी, उसे पुनर्जीवित किया। ये काम करते हुए हम गहराई से सोचते थे कि ये सब हम क्यों कर रहे हैं? इस अनुभव से मुझे आज भी बहुत ऊर्जा मिलती है।

अलग-अलग आन्दोलनों से क्या सीखा?

– भूदान–ग्रामदान के अलावा मुझे चिपको आन्दोलन, शराबबन्दी एवं टिहरी बाँध आन्दोलन आदि से जुड़ने का अवसर मिला। आन्दोलनों और गाँवों में काम करते हुए मैंने गाँव वालों से बहुत सीखा। मेरी यह समझ पक्की हुई कि गाँव के अनपढ़ लोगों की समझ पढ़े–लिखे लोगों से बहुत ज्यादा है। सत्याग्रह की ताकत उनमें ज्यादा है।

मुझे याद है जब खेराकोट गाँव में सरकार की अनुमति से एक ठेकेदार को सोप–स्टोन (खड़िया पत्थर) की खान का ठेका दे दिया गया था। इससे खान का मलबा बहकर लोगों के पीने के पानी में मिलने लगा, लोगों के खेतों की जमीन खराब होने लगी। तब वहाँ की महिलाओं ने सत्याग्रह किया। जब कलक्टर ने मामला सुलझाने के लिए एक सभा बुलाई, तो उन अनपढ़ स्त्रियों ने जिन बातों को लोगों के समक्ष रखा, वे वाकई उनकी सहज बुद्धिमता की परिचायक है। मालती बाई ने निडरता से कहा था, ''मुझे आपका विकास और रोजगार समझ नहीं आता। यह मेरे विकास और मेरे रोजगार को खत्म कर रहा है। आपके विकास ने हमारे जंगल, जमीन को खत्म किया है, पर हमारा पीढ़ियों से चला आ रहा रोजगार और विकास टिकाऊ है।'' उसके पास पढ़े–लिखे लोगों की तरह 'वैश्वीकरण' या 'विकास' जैसे शब्द नहीं थे, पर उसकी बात में गहरी समझ थी।

आपने अपने जीवन में किन महत्त्वपूर्ण चीजों को पहचाना?

– किताबों में क्या सच होता है और क्या झूठ? इसका विश्लेषण मैंने आन्दोलनों से जुड़ने के बाद ही शुरू किया। पुस्तकों का विश्लेषण करने और प्रश्न उठाने की स्वतन्त्रता स्कूल में नहीं थी। अपने अनुभवों के बाद मैं स्कूल में पढ़ाए गए झूठ पहचान पा रही हूँ। रटी हुई बातों को लिख देने को स्कूली–भाषा में 'लेखन' कहते हैं। लेकिन मौलिक लेखन के लिए हम आश्रम में हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशित करते थे, जिसमें हम अपने निजी अनुभवों, कहानियों, कविताओं, घटनाओं एवं चित्रों को शामिल करते थे।

मैं यह भी पहचान पाई हूँ कि परीक्षाएँ व्यक्ति की योग्यता का आकलन कभी नहीं कर सकती। परीक्षा और वास्तविक योग्यता का कोई सम्बन्ध नहीं है। श्रम करने की शक्ति, खेत में काम करने की क्षमता, कताई और बुनाई की योग्यता ... ये सब स्कूल से मुक्त होने के बाद ही सम्भव हुआ है। जैसे–जैसे काम करते हुए समझ बनती गई, मैंने थोपी हुई मान्यताओं का विरोध करना शुरू किया।

आज आप कैसे आन्दोलन की जरूरत महसूस करती हैं?

– पुरानी आन्दोलन पद्धतियों की धार अब ख़त्म हो गई है। रैली, धरने, उपवास आज प्रभावहीन हो गए हैं। आज नकारात्मक आन्दोलनों के बजाय रचनात्मक आन्दोलनों की जरूरत है, जिनमें उत्पादक श्रमकार्य किए जाएँ और स्थानीय स्तर पर उत्पादन का विनिमय हो। ऐसे आन्दोलन साथ मिलकर सीखने से ही सम्भव हो सकेंगे। जिन लोगों ने स्कूल छोड़कर अपने जीवन को अपने हाथ में लिया है, उनका निर्णय सही है। क्योंकि उन लोगों पर अकादमिक लोगों का ज्यादा असर नहीं हुआ है और वे आज इस मानसिक प्रदूषण से बचे हुए हैं।

मुझे लगता है कि आज नौकरी या 'कैरियर' का विचार त्याग देना चाहिए। बल्कि स्वावलम्बन का कौशल विकसित करना चाहिए। ऐसे तरीके खोजे जाएँ कि हाथों से किए जाने वाले उत्पादक कार्य स्थानीय स्तर पर किए जा सकें।

राधा बहन से और बातचीत करने के लिए निम्नलिखित पते पर सम्पर्क कर सकते हैं :- सुश्री राधा भट्ट, कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट, कस्तूरबा ग्राम, इन्दौर (मध्यप्रदेश)

वेब-डिजाइनिंग-कार्यशाला

समाज में शान्ति एवं अहिंसा का माहौल स्थापित करने के लिए नागपुर में जनवरी माह में 15 दिवसीय 'वेब–डिजाइनिंग एण्ड मैनेजमेंट' कार्यशाला आयोजित की गई। इस कार्यशाला में दो साथियों के संक्षिप्त अनुभव प्रस्तुत हैं :–

''वेब–डिजाइनिंग एण्ड मैनेजमेंट का कोर्स आमतौर पर 2 साल तक पढ़ाया जाता है। लेकिन यहाँ हमें यह काम 15 दिन में करना था। यहाँ हमने फोटोशॉप, फ्लेश सोफ्टवेयर एवं HTML नामक कम्प्यूटर की भाषा सीखी। हमें साइट बनाने की अलग–अलग प्रक्रियाओं से परिचित कराया गया। हमने खुद की पद्धति खोजकर साइट बनाई। मैंने <www.sanwad.org> नामक वेबसाइट बनाई।

लेकिन मेरे मन में काफी सवाल खड़े हुए कि इस आधुनिक टेक्नोलॉजी पर अधिक निर्भरता से कहीं हमारी हाथों की कला नहीं पिछड़ जाए। जैसे फोटोशॉप में हम मूल फोटो में जैसा चाहें, वैसा बदलाव कर सकते हैं। एक का सिर दूसरे की धड़ पर भी लगा सकते हैं। खराब खींचे गए फोटो को कुछ हद तक अच्छा किया जा सकता है। तो यह कहीं एक दिन हमारे हाथों की कला, अभिव्यक्ति पर आक्रमण तो नहीं करेगा? मैं अच्छे फोटो निकालने का प्रयास छोड़ दूँगा, यह सोचकर कि कुछ बिगड़ गया, तो कम्प्यूटर पर सुधार लेंगे। इससे शायद कोई भी काम करने से पहले सोचना कम पड़ेगा। ये सब केवल फोटो तक ही सीमित नहीं रहकर अन्य विषयों पर भी लागू होगा।''

– विनय फुटाणे, अमरावती
<vinayfutane@rediffmail.com>

''मैं जब इस कार्यशाला में गया, तो मुझे कुछ हिचकिचाहट थी, लेकिन बाद में लगा कि तकनीकि–स्तर पर यह सीखना ज्यादा मुश्किल नहीं है। यहाँ मुझे वेबसाइट बनाने के साथ–साथ विभिन्न लोगों के साथ अपने विचारों और समझ को बढ़ाने का मौका मिला। कार्यशाला में शान्ति और अहिंसा से सम्बन्धित मुद्दों पर चर्चाएँ होती थीं, ताकि हम अपने जीवन में शान्ति के लिए आवश्यक तत्त्वों और अशान्ति के कारणों को समझ सकें। कार्यशाला से लौटने के बाद मैं हमारे 'पहल' समूह की वेबसाइट बना रहा हूँ और अब मैं एनिमेशन भी बनाना सीखना चाहता हूँ, ताकि मैं अपने अन्तर्मुखी स्वभाव के कारण दबी बातों को इस माध्यम से व्यक्त कर सकूँ।''

– युवराज, इन्दौर <pahal_g@rediffmail.com>

कार्यशाला के बारे में अधिक जानकारी के लिए निम्न पते पर सम्पर्क कर सकते हैं :– जॉन, इंडिया पीस सेंटर, सी. के. नायडू रोड़, सिविल लाइन, नागपुर – 1 (महाराष्ट्र) फोन – 0712 – 2556952

सरवास अन्तर्राष्ट्रीय

सरवास अन्तर्राष्ट्रीय करीब 100 देशों के स्वयंसेवकों का एक संगठन है, जो विश्व–शान्ति के लिए कार्यरत है। इस शान्ति आन्दोलन की शुरूआत 1949 में विश्वभर में आपसी समझ व सौहार्द का माहौल स्थापित करने के लिए की गई। यह ताने और बाने दोनों तरह से कार्य कर रहा है। एक तो ऐसे मेजबानों के माध्यम से जो विश्वभर के यात्रियों के लिए अपने दरवाजे तहेदिल से खोलकर बैठे हैं और दूसरे ऐसे यात्री हैं, जो अलग–अलग जगहों को गहराई से जानने की इच्छा रखते हैं। इन सरवास साथियों के माध्यम से यात्रियों को मेजबानों और उनके परिवारों, दोस्तों से मिलकर उनके रोजमर्रा के जीवन में भाग लेने का मौका मिलता है।

स्वपथगामी साथी भी सरवास मित्रों के साथ स्वयंसेवक के रूप में यात्रा कर सकते हैं और मेजबान बन सकते हैं। इसमें केवल एक ही शर्त है कि किसी भी जाति या संस्कृति के लोगों की मेहमाननवाजी करनी होगी, इसमें किसी तरह का भेदभाव नहीं चल सकता। इसमें आमतौर पर हर तरह के साधारण जीवन जीने वाले लोग भाग ले सकते हैं। यह पर्यटन से थोड़ा हटकर है, जहाँ लोगों के वास्तविक जीवन से जुड़कर यात्रा को अनुभव करने की आशा की जाती है।

हर देश के अलग–अलग भागों में लगभग 13000 सरवास साथी यात्रियों के लिए अपने दरवाजे खोलकर बैठे हैं। हर साल एक सूची तैयार की जाती है, जिसमें ऐसे सरवास मेजबानों के नाम व पते डाले जाते हैं, जो इच्छुक यात्रियों को प्राप्त हो सकते हैं। यह सूची निम्नलिखित वेबसाइट की मदद से आपके आसपास के सरवास निदेशक से प्राप्त की जा सकती है :– <www.servas.org>

कुटुम्ब मेला

'कुटुम्ब' ऐसे परिवारों का एक समूह है, जो बनी–बनाई दुनिया से हटकर अपने परिवारों में साथ मिलकर सीखने के मौके बना रहे हैं। इन परिवारों की यह मान्यता है कि 'परिवार' एक ऐसी जगह है, जहाँ सीखने और निरन्तर नए प्रयोग करने की गुंजाइश है, जिन्हें हमें जीवन्त करना है।

इसी सोच के साथ ऐसे इच्छुक परिवारों का एक 'कुटुम्ब–मेला' 26–29 मई 2005 को पंचगनी (सातारा, महाराष्ट्र) में आयोजित किया जा रहा है। इस मेले में उन परिवारों का स्वागत है, जो वास्तव में स्कूली–व्यवस्था के शिकंजे से निकलकर सीखना एवं जीना चाहते हैं। अधिक जानकारी के लिए विधि जैन, 21 फतेहपुरा, उदयपुर – 313004 (राज.) <vidhi@swaraj.org>

स्कूल-बिल्डिंग के बेहतरीन उपयोग!

कुछ महीनों से हम, लोगों के साथ इस विषय पर चर्चा करने की कोशिश कर रहे हैं कि *'जब हम सब इस बात को स्वीकारते हैं कि आज की स्कूली व्यवस्था दूषित हो गई है तो फिर इन स्कूलों को जीवित रखने का क्या फायदा है?'* कुछ लोगों की प्रतिक्रियाएँ हैं कि 'हमने जब इतना पैसा स्कूलों की बिल्डिंगों व अन्य संसाधनों को बनाने में लगाया है, तो क्या हम उन्हें यूँ ही व्यर्थ जाने देंगे?'' स्कूल की इमारत व स्थान का किस तरीके से सदुपयोग हो सकता है, हम उसके 10 उदाहरण बता रहे हैं। यह ग्रामीण व शहरी दोनों परिप्रेक्ष्य में लागू हो सकते हैं। ऐसे कई उपयोग आप भी ढूँढ़ सकते हैं –

1. उस जगह को धर्मशाला में परिवर्तित किया जा सकता है।
2. उसे अखाड़ा या Gymnasium बनाया जा सकता है।
3. उसे गौशाला व भैसों का तबेला बनाया जा सकता है।
4. हर क्लासरूम में कुट्टी, चारा आदि भरा जा सकता है, जिससे इसे बारिश से बचाया जा सके।
5. उस जगह को गोबर गैस प्लांट बनाया जा सकता है।
6. वहाँ नर्सरी लगाई जा सकती है।
7. उस स्थान को कला, लोकगीत, कहानियों, किताबों आदि का म्यूज़ियम और पुस्तकालय बनाया जा सकता है।
8. वहाँ चारा व अनाज का डिपो बनाया जा सकता है।
9. ध्यान, योग–साधना के लिये उपयोग किया जा सकता है।
10. उस स्थान को सामुदायिक भवन बनाया जा सकता है जहाँ लोग मिलकर सामूहिक आयोजन कर सकते हैं।

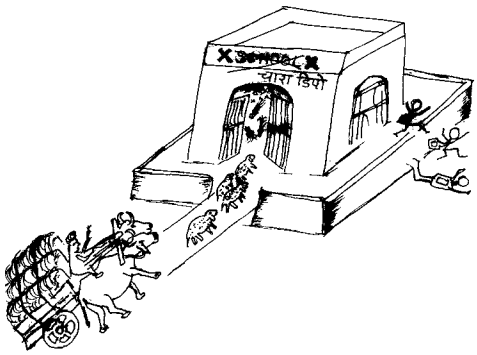

– शिक्षान्तर टीम

म्हारा करम फूटग्या!

म्हूँ अंगरेजी भणी–लिखी, म्हारा करम फूटग्या दादोसा।
सास कहे बहू पाणी लादे, पाणी चाली दादोसा,
पॉव फिसलग्या म्हूँ गिर गई, हड्डी टूटी दादोसा।
म्हूँ अंगरेजी ....।

नणद कैवे भाभी रोट्याँ पोईदे, रसोड़े चाली दादोसा।
चूल्हो जलावता साड़ी जल गई, पल्लू जलग्या दादोसा।

जेठाणी कैवे बहू मन्दिर चालाँ, पूजा करलाँ दादोसा।
पूजा करता दीवो बुझग्यो, थाली पड़ गई दादोसा।

जेठजी कैवे बहू गायाँ दूहले, वाड़ा में चाली दादोसा।
गायाँ दूवताँ लाताँ पड़ गई, गोबर में मिल गई दादोसा।

देवरजी कैवे भाभी मक्की खोदो, खेताँ चाली दादोसा।
मक्की खोदताँ काली पड़ गई, धूला में मिल गई दादोसा।

अणी वाताँ पे जद म्हूँ होचूँ, घणी हरम आवे दादोसा।
म्हारी अकल परे भाटा पड़ग्या, जो काम न कीदो दादोसा।

मैंने यह गीत मेवाड़ी में लिखा है, क्योंकि मेवाड़ी हमारी स्थानीय बोली है। जो मैं कहना चाहती हूँ, वो किसी अलग भाषा में शायद नहीं लिख पाती। आज जो स्थितियाँ मैं अपने आसपास देख रही हूँ, वही मैंने अपने गीत में लिखने का प्रयास किया है। इस गीत पर विचार करते हुए मैं अपने पारम्परिक काम (मिट्टी के साथ और सिलाई), प्रकृति और श्रमकार्यों से जुड़ने की कोशिश कर रही हूँ। मैं मेवाड़ी गीत एकत्रित करके एक किताब निकाल रही हूँ। इसके लिए मैं अलग–अलग लोगों से मिली, जो पढ़े–लिखे नहीं हैं, लेकिन वे अपनी बात गीतों के जरिये कहते हैं। उनके ये गीत अपने काम के साथ जुड़े हैं। ये गीत बने–बनाए नहीं हैं, बल्कि समुदाय के सब लोग मिलकर नए–नए गीत बनाते हैं और पुराने गीतों में भी नया जोड़कर सामूहिक रूप से गाते हैं।

– गुड्डी प्रजापत, सूर्योदय कॉलोनी, भुवाणा, उदयपुर

आमन्त्रण

आज हमारे सामने यह बहुत बड़ी चुनौती है कि हम इस बनी–बनाई दुनिया में अपनी पहचान और अपने तरीके से जीवन जीने की आजादी को कैसे कायम रखें? अमानवीय व्यवस्था के जाल से निकलकर अलग–अलग विकल्प कैसे बनाएँ? आज यह जरूरी हो गया है कि हम अपनी क्षमताओं को पहचानकर सृजनात्मक जीवन की शुरूआत करें, जिसमें हम आपसी विश्वास व अन्तर्निर्भरता पर आधारित स्वराज हासिल कर सकें। इसके लिए हर व्यक्ति को अपने सीखने की प्रक्रिया को अपने हाथ में लेना पड़ेगा।

यह पत्रिका शोषणमुक्त जीवन जीने और अपने रास्ते खुद बनाने वाले स्वपथगामियों द्वारा शुरू किया गया एक प्रयास है। अलग–अलग समुदायों, समूहों और व्यक्तियों के साथ संवाद स्थापित करने की एक कोशिश है, जिसके माध्यम से हम न केवल अपने अनुभवों का आदान–प्रदान करते हैं, बल्कि ऐसे लोगों, संस्थानों और स्थानों से भी रू–ब–रू होते हैं, जो हमारे सीखने के सन्दर्भ बन सकते हैं।

पत्रिका में जिन नए अवसरों का उल्लेख किया गया है, उनके बारे में विस्तृत जानकारी के लिए आप उनसे सीधा सम्पर्क कर सकते हैं और उनके साथ सीखने के बारे में बातचीत कर सकते हैं।

हम उन सभी लोगों को आमन्त्रित करते हैं, जो अपने जीवन में नए–नए प्रयोग कर रहे हैं और साथ मिलकर सीखने के मौके बना रहे हैं। हम उन लोगों को भी आमन्त्रित करते हैं, जो इस पत्रिका के सम्पादन में सहयोग करना चाहते हैं। अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :– रामावतार सिंह, c/o शिक्षान्तर, 21 फतेहपुरा, उदयपुर – 04 (राजस्थान) <ramawtarsingh@yahoo.co.in> फोन – 0294–2451303